[2019] 2 एस. सी. आर. 643

श्री नरेंद्र कुमार श्रीवस्तवा

बनाम्

बिहार राज्य और अन्य

(आपराधिक अपील संख्या 211/2019)

फरवरी 04,2019

[ए. के. सिकरी और एस. अब्दुल नजीर, न्यायमूर्तिगण]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धाराएँ ।340 और 195-दंड संहिता, 1860 - s.193/सपठित धाराएस. 34-गलत साक्ष्य-अपीलार्थी ने प्रत्यर्थियों द्वारा दिनांकित 29.06.2014 के उच्च न्यायालय के आदेश का पालन न करने का आरोप लगाया और उनके खिलाफ अवमानना याचिका दायर की-प्रत्यर्थियों ने दिनांकित 29.06.2014 आदेश का पालन करते हुए एक कारण पृक्षा दायर की तदनुसार, अवमानना कार्यवाही को हटा दिया गया-इसके बाद, अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी सं.2 से 4 के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 193 सपठित धारा 34 के तहत निजी शिकायत दर्ज किया .यह आरोप लगाते हुए कि प्रतिवादियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपने कारण पृक्षा हलफनामे में असत्य और गलत बयान दिया था-मजिस्ट्रेट ने निजी शिकायत के आधार पर भा.दं.सं. की धारा 193 के अंतर्गत दंडनीय उपराध का संज्ञान लिया-प्रतिवादी संख्या 2 से 4 ने मजिस्ट्रेट के आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण याचिका दायर की-उच्च न्यायालय ने मजिस्ट्रेट के आदेश को खारिज कर दिया-अपील पर अभिनिर्धारित कियाः एम. एस. अहलावत मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि किसी अपराध के संबंध में निजी शिकायतों को पूरी तरह से वर्जित किया जाता है। जो भा.दं.सं. की धारा 193 के तहत प्रविवद्ध किया गया है द.वि.य की धारा 195 के तहत निर्धारित प्रक्रिया अनिवार्य हैइसके अलावा,द.वि.स. की

धारा 340 भी यह स्पष्ट करता है कि इस धारा के तहत अभियोजन केवल उस अदालत की मंजूरी से शुरू किया जा सकता है जिसकी कार्यवाही के तहत धारा 195 (1)(बी) में निर्दिष्ट अपराध कथित रूप से किया गया है वर्तमान मामला पूरी तरह से द.वि.स. की धारा 195 (1) (बी) के तहत आने वाले मामलों की श्रेणी में आता हैक्योकि अपराध भा.द.वि. की धारा 195 (1) (b) (i) के तहत अपराध दंडनीय है।निजी शिकायत के आधार परः इस प्रकार, मजिस्ट्रेट ने भा.द.वि. की धारा 193 के तहत दंडनीय अपराध का संज्ञान लेने में गलती की। उच्च न्यायालय ने मजिस्ट्रेट- के आदेश को सही ढंग से खारिज कर दिया-झूठी गवाही।

अपील का निपटारा करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित कियाः 1. धारा 195 (1) (बी) (आई) और धारा 195 (1) (ख) (I) के तहत अपराध स्पष्ट रूप से अलग हैं।अपराधों की पहली श्रेणी झूठे साक्ष्य के अपराधों और सार्वजनिक न्याय के खिलाफ अपराधों को संदर्भित करती है, जबकि अपराधों की दूसरी श्रेणी किसी भी अदालत में कार्यवाही में प्रस्तुत या साक्ष्य में दिए गए दस्तावेज़ के संबंध में अपराधों से संबंधित है। [कंडिका 13] [650-एफ]

2. द.प्र.स. 1 की धारा 195. अदालत द्वारा पालन किए जाने वाले एक नियम को निर्धारित करती है जो उसमें निर्दिष्ट अपराध का संज्ञान लेता है, लेकिन इसमें अदालत के मार्गदर्शन के लिए कोई निर्देश नहीं है जो बाद के अदालत में या उसके संबंध में किए गए कथित अपराध के संबंध में अभियोजन शुरू करना चाहता है।उस उद्देश्य के लिए, किसी को धारा 340 की ओर रुख करना चाहिए, जिसमें कानून को गति देने की इच्छा रखने वाले न्यायालय से या तो स्वतः संज्ञान या उस ओर से की गई शिकायत को प्राथमिकता देने की आवश्यकता होती है। [कंडिका 14] [650-जी; 651-ए]

3. द.प्र.सं. की धारा 340 यह स्पष्ट करती है कि इस धारा के तहत अभियोजन केवल उस अदालत की मंजूरी से शुरू किया जा सकता है जिसकी कार्यवाही के तहत धारा 195 (1) (ख) में निर्दिष्ट अपराध कथित रूप से किया गया है।इस धारा का उद्देश्य यह पता लगाना है कि क्या न्याय के प्रशासन को प्रभावित करने वाला कोई अपराध उस समय के दौरान अदालत में पेश किए गए या साक्ष्य में दिए गए किसी दस्तावेज के संबंध में किया गया

है जब दस्तावेज या साक्ष्य न्यायिक हिरासत में था और क्या ऐसी कार्रवाई करना न्याय के हित में भी समीचीन है।अदालत न केवल प्रथम दृष्टया मामले पर विचार करेगी बल्कि यह भी देखेगी कि आपराधिक कार्यवाही शुरू करने की अनुमति देना जनहित में है या नहीं। [कंडिका 16] [652-क-ख]

4. एम. एस. अहलावत मामले में इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि भा.द.सं. की धारा 193 के तहत किए गए अपराध के संबंध में निजी शिकायतें पूरी तरह से वर्जित हैं और दं.प्र.सं. की धारा 195 के तहत निर्धारित प्रक्रिया अनिवार्य है। [कंडिका 19] [653-ए]

5. यह मामला पूरी तरह से द.प्र.स. की धारा 195 (1) (ख) (I) के तहत आने वाले मामलों की श्रेणी में आता है क्योंकि अपराध भा.द.वि. की धारा 193 के तहत दंडनीय है। इसलिए, मजिस्ट्रेट ने एक निजी शिकायत के आधार पर अपराध का संज्ञान लेने में गलती की है।उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 2 से 4 द्वारा दायर आपराधिक पुनरीक्षण याचिका में मजिस्ट्रेट के आदेश को सही ढंग से खारिज कर दिया है।हालाँकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय द्वारा लगाए गए अर्थदंड को दरकिनार कर दिया जाता है। [कंडिका 6 और 23] [647-ख 655-ख]

> सचिदा नंद सिंह और एक अन्य बनामबिहार और एक अन्य राज्य (1998) 2 एससीसी 493:[1998] 1 एस. सी. आर. 492-लागू नहीं।एम. एस. अहलावत बनाम हरियाणा राज्य और एक अन्य (2000) 1 एस. सी. सी. 278:[1999] 4 पूरक एस. सी. आर. 160-पर आधारितछज्जू राम बनाम राधे श्याम (1971) 1 एस. सी. सी. 774: [1971] पूरक एस. सी. आर. 172; संतोख सिंह बनाम इजहार हुसैन और अन्य (1973) 2 एससीसी 406:[1974] 1 एस. सी. आर. 78-संदर्भित।

मामला कानून संदर्भ

[1998] 1 एससीआर 492	अप्रयोज्य	पैरा 7
[1999] 4 पूरक एससीआर 160	उस पर भरोसा करें	पैरा 8
[1971] पूरक।एससीआर 172	संदर्भित किया गया है	पैरा 17
[1974] 1 एससीआर 78	संदर्भित किया गया है	पैरा 18

आपराधिक अपील न्याय निर्णयःआपराधिक अपील संख्या 211/2019

आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या 111/2017 में पटना उच्च न्यायालय क्षेत्राधिकार के दिनांकित 30.03.17 के निर्णय और आदेश से।

अश्विनी भारद्वाज, अपीलार्थी की ओर से अधिवक्ता।

अभिनव मुखर्जी, सुश्री बिहू शर्मा, सुश्री पूर्णिमा कृष्णा, विक्रांत यादव, संतोष पॉल, एम. सी. ढींगरा, अधिवक्ता प्रतिवादियों के लिए।

न्यायालय का निर्णय एस. अब्दुल नजीर, न्यायमूर्ति द्वारा दिया गया।

निर्णय

1. हमने पक्षकारों के विद्वान अभिवक्ता को सुना है।

2. यह अपील 2017 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 111 में दिनांक 30.03.2017 के निर्णय और आदेश के खिलाफ निर्देशित है, जिसमें पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में प्रतिवादी संख्या 2 से 4 द्वारा दायर की गई पुनरीक्षण याचिका को अनुमति दी है और भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 के लिए) की धारा 193 के तहत दंडनीय अपराध का संज्ञान लेते हुए विद्वत सहायक मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, मोतिहारी द्वारा दिनांक 22.12.2016 को पारित आदेश को अपीलार्थी द्वारा दायर की गई एक निजी शिकायत के आधार पर रद्द कर दिया है ।

3. प्रतिवादी संख्या 2 से 4 दूरदर्शन और आकाशवाणी के अधिकारी हैं।अपीलार्थी दूरदर्शन केंद्र, मोतिहारी में इंजीनियरिंग सहायक के रूप में 1400/- से 2600/- रुपये के वेतनमान में शामिल हुआ था। यह प्रतिवाद किया गया कि सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा दिनांक 15.05.1995 के अपने निर्णय द्वारा दिनांक 01.01.1986 से इंजीनियरिंग सहायकों के वेतनमान को संशोधित करके 2000/- रु से 3000/- रुपये कर दिया गया था। वरिष्ठ इंजीनियरिंग सहायक के वेतनमान को 01.01.1986 से संशोधित करके 2000/- से 3275/- रुपये कर दिया गया।यह उनका मामला है कि 01.01.1996 से सभी श्रेणियों का प्रतिस्थापन वेतनमान 6500/- से 10500/- रूपए तय किया गया था। सुनिश्चिचित उनयन वृध्दि (एसीपी) योजना के लागू होने पर संबंधित कैडर के कर्मचारी संघ ने 8000 रुपये/ से 13,500 रुपये/ के वेतनमान में प्रथम एसीपी के अनुदान के लिए प्रतिनिधित्व किया था, जिसकी अनुमति नहीं दी जा रही थी, जिसके कारण केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, पटना पीठ (संक्षेप में 'द कैट') के समक्ष एक आवेदन दाखिल किया गया। इसने 2002 के ओ. ए. सं. 514 को जन्म दिया।उक्त ओ. ए. को कैट द्वारा दिनांक 07.09.2009 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी।

4. भारत संघ ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर करके उक्त आदेश को चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने इस अवलोकन के साथ रिट याचिका को स्वीकार कर लिया कि एसीपी के अनुदान के लिए कोई सामान्य निर्देश नहीं दिया जा सकता है और एसीपी को व्यक्तिगत आधार पर प्रदान किया जाना है। इसके बाद, अपीलार्थी ने सक्षम प्राधिकारी के समक्ष प्रथम एसीपी की मंजूरी के लिए प्रतिनिधित्व किया। इनकार करने पर, उसने कैट के समक्ष 2009 की ओ. ए. संख्या 173 दाखिल की, जिसे 13.02.2013 को खारिज कर दिया गया।अपीलार्थी ने, उसके बाद, 2014 की एक रिट याचिका सीडब्ल्यूजेसी संख्या 2797 दाखिल करके उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसका निपटान 29.06.2014 के एक आदेश द्वारा किया गया, जिसमें प्रत्यर्थियों को अपीलार्थी द्वारा दायर अभ्यावेदन पर उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया था.उक्त आदेश के गैर-अनुपालन का आरोप लगाते हुए, अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय के

समक्ष अवमानना याचिका दायर की, जिसने 2015 की एमजेसी संख्या 2912 को जन्म दिया।

5. अवमानना का आरोप लगाने वाली याचिका में, यह दलील दी गई कि अवमानना के मामले में, प्रत्यर्थियों ने 29.06.2014 के आदेश का अनुपालन दिखाते हुए एक कारण बताओ याचिका दायर की, और तदनुसार, अदालत की अवमानना के मामले को अपीलकर्ता को अदालत के निर्देश के अनुपालन में पारित आदेश को उचित मंच के समक्ष चुनौती देने की स्वतंत्रता के साथ छोड़ दिया गया।उक्त आदेश को चुनौती देने के बजाय, अपीलार्थी ने सहायक मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, मोतिहारी के समक्ष प्रत्यर्थी नं. २ से ४ के खिलाफ एक निजी शिकायत दायर की, जिसमें भारतीय दंड संहिता की धारा १९३ के साथ पठित धारा ३४ के तहत दंडनीय अपराध करने का आरोप लगाया गया कि प्रत्यर्थी द्वारा अपने कारण बताओ हलफनामे में झूठे और गलत बयान के कारण, उच्च न्यायालय ने अवमानना का मामला वापस ले लिया.दण्डाधिकारी ने दिनांक 22.12.2016 के एक आदेश द्वारा इसका संज्ञान लिया और प्रत्यर्थी संख्या 2 से 4 को समन किया।

6. प्रत्यर्थी नं. 2 से 4 ने उच्च न्यायालय के समक्ष दण्डाधिकारी के उक्त आदेश को चुनौती दी।जैसा कि ऊपर देखा गया है, उच्च न्यायालय ने दिनांक 30.03.2017 के अपने आदेश द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार कर लिया है।

7. अपीलार्थी के विद्वत वकील प्रस्तुत करते हैं कि अपीलार्थी द्वारा दायर अवमानना याचिका में, प्रत्यर्थियों ने न्यायालय के बाहर तैयार/जाली झूठे शपथपत्र दाखिल किए थे।झूठे हलफनामों के आधार पर उच्च न्यायालय ने अवमानना के मामले को हटा दिया। इसलिए, अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी नं. 2 से 4 के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के तहत दण्डाधिकारी के समक्ष शिकायत दर्ज कराई।यह तर्क दिया गया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा १९३ के तहत एक निजी शिकायत दर्ज करने के लिए पूर्व मंजूरी प्राप्त करना अनिवार्य नहीं था और यह कि अपीलार्थी द्वारा दायर शिकायत पोषणीय योग्य थी.इस संबंध में उन्होंने संचिदा में इस न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है, सचिदा नंद सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, (1998) 2 एससीसी 493।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि न्यायिक कार्यवाहियों में मिथ्या साक्ष्य देने के अपराध के लिए दंड भारतीय दंड संहिता की धारा 193 में निर्धारित है और ऐसे अपराध का संज्ञान लेने को शासित करने वाली विधि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 में अंतर्विष्ट है।IPC की धारा 193 के तहत दंडनीय अपराध के न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने पर स्पष्ट रोक लगाता है, जब तक कि यह न्यायालय या न्यायालय के अधिकारी द्वारा लिखित शिकायत न हो। जिसे न्यायालय इस संबंध में लिखित रूप से अधिकृत कर सकता है। जिस न्यायालय के न्यायिक कार्यवाही के संबंध में कथीत तौर पर अपराध किया गया है। चूंकि ऐसी कोई शिकायत नहीं की गई है इसलिए दण्डाधिकारी के आदेश को अभिखंडित करने में उच्च न्यायालय को न्यायोचित ठहराया गया। इस संबंध में, इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया जाता है, एम. एस. अहलावत बनाम हरियाणा राज्य और एक अन्य, (2000) 1 एस. सी. सी. 278

9. आग्रह किए गए तर्कों को ध्यान में रखते हुए, विचार करने के लिए प्रश्न यह है कि क्या मजिस्ट्रेट द्वारा किसी निजी शिकायत के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के तहत दंडनीय अपराध का संज्ञान लेना उचित था?

10. आगे बढ़ने से पहले, भारतीय दंड संहिता और दंड प्रक्रिया संहिता की सुसंगत धाराओं का परिशीलन करना महत्वपूर्ण है। भारतीय दंड संहिता की धारा 193 इस प्रकार है।

> "193 झूठे साक्ष्य के लिए दंड- जो कोई साशय किसी न्यायिक कार्यवाही के किसी प्रक्रम में मिथ्या साक्ष्य देता है, या किसी न्यायिक कार्यवाही के किसी प्रक्रम में उपयोग किए जाने के प्रयोजन के लिए मिथ्या साक्ष्य देता है, वह किसी अन्य प्रक्रम के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकती है, दंडित किया जाएगा और जुर्माने का भी दायी होगा।
>
> और जो कोई जानबूझकर किसी अन्य मामले में झूठा साक्ष्य देता है या गढ़ता है, उसे दोनों में से किसी एक के कारावास से दंडित किया जाएगा,

तीन वर्ष तक की अवधि के लिए आवेदन और जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

व्याख्या 1. न्यायालय के समक्ष विचारण एक न्यायिक कार्यवाही है।

व्याख्या 2. किसी न्यायालय के समक्ष किसी कार्यवाही के लिए प्रारंभिक विधि द्वारा निर्देशित अन्वेषण न्यायिक समर्थन का एक चरण है, हालांकि यह जांच न्यायालय के समक्ष नहीं की जा सकती है।

चित्रण

क, यह अभिनिश्चित करने के प्रयोजन से दण्डाधिकारी के समक्ष जांच में कि क्या 'जेड' को विचारण के लिए सुपुर्द किया जाना चाहिए, शपथ पर ऐसा कथन करता है जिसे वह मिथ्या जानता है।चूंकि यह जांच न्यायिक कार्यवाही का एक चरण है, इसलिए 'क' ने झूठे साक्ष्य दिए हैं।

व्याख्या 3. कानून के अनुसार किसी न्यायालय द्वारा निर्देशित और न्यायालय के प्राधिकार के तहत की जाने वाली जांच न्यायिक कार्यवाही का एक चरण है, हालांकि यह जांच किसी न्यायालय के समक्ष नहीं हो सकती है।

चित्रण

क, स्थल पर भूमि की सीमाओं का पता लगाने के लिए न्यायालय द्वारा प्रतिनियुक्त अधिकारी के समक्ष जांच में शपथ पर ऐसा कथन करता है जिसे वह मिथ्या जानता है।चूंकि यह जांच न्यायिक कार्यवाही का एक चरण है, इसलिए ए ने झूठे साक्ष्य दिए हैं।

11. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 में स्पष्ट रूप से निम्नलिखित कहा गया हैः

“195 लोक सेवकों के विधिसम्मत प्राधिकार की अवमानना, लोक न्याय के विरुद्ध अपराधों और साक्ष्य में दिए गए दस्तावेजों से संबंधित अपराधों के लिए अभियोजन।

(1) कोई भी न्यायालय संज्ञान नहीं लेगा -

(क) (i) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 172 से 188 (दोनों सहित) के अधीन दंडनीय किसी अपराध का, या

(ii) ऐसे अपराध के किसी दुष्प्रेरण, करने का प्रयास, या

(iii) ऐसे अपराध करने के लिए किसी आपराधिक षड्यंत्र का,

संबंधित लोक सेवक या किसी अन्य लोक सेवक की लिखित शिकायत के सिवाय, जिसके वह प्रशासनिक रूप से अधीनस्थ है,

(ख) (i) भारतीय दंड संहिता की निम्नलिखित धाराओं (1860 का 45), अर्थात् धारा 193 से 196 (दोनों समावेशी), 199,200,205 से 211 (दोनों समावेशी) और 228 के अधीन दंडनीय किसी अपराध का, जब ऐसा अपराध किसी न्यायालय में किसी कार्यवाही में या उसके संबंध में किया गया है, या

(ii) उक्त संहिता की धारा 463 में वर्णित या धारा 471, धारा 475 या धारा 476 के अधीन दंडनीय किसी अपराध का, जब ऐसा अपराध किसी न्यायालय में किसी कार्यवाही में पेश किए गए या साक्ष्य में दिए गए किसी दस्तावेज के संबंध में किया गया है, या

(iii) किसी अपराध को करने, करने या करने का प्रयास करने या किसी को उकसाने के लिए किसी आपराधिक षड्यंत्र का, उपखंड (i) या उपखंड (ii) में विनिर्दिष्ट अपराध, [सिवाय उस न्यायालय की या उस न्यायालय के ऐसे अधिकारी की, जिसे वह न्यायालय इस निमित्त

लिखित रूप में प्राधिकृत करे, या किसी अन्य न्यायालय की, जिसका वह न्यायालय अधीनस्थ है,

(2)शिकायत पर जहां धारा (1) के खंड (क) के अधीन किसी लोक सेवक द्वारा शिकायत की गई है, वहां कोई प्राधिकारी, जिसके वह प्रशासनिक रूप से अधीनस्थ है, शिकायत को वापस लेने का आदेश दे सकेगा और ऐसे आदेश की एक प्रति न्यायालय को भेज सकेगा और न्यायालय को इसकी प्राप्ति पर शिकायत पर आगे कोई कार्यवाही नहीं की जाएगीः

बशर्ते कि इस तरह की वापसी का आदेश नहीं दिया जाएगा यदि पहली बार के न्यायालय में मुकदमा पूरा हो गया है।

(3) उपधारा (1) के खंड (ख) में 'न्यायालय' शब्द से सिविल, राजस्व या दांडिक न्यायालय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत किसी केन्द्रीय, प्रान्तीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन गठित अधिकरण भी है, यदि उस अधिनियम द्वारा इस धारा के प्रयोजनों के लिए न्यायालय घोषित किया जाता है।

4. उपधारा (1) के खंड (ख) के प्रयोजनों के लिए, कोई न्यायालय उस न्यायालय का अधीनस्थ समझा जाएगा जिसे ऐसे पूर्व न्यायालय की अपीलनीय डिक्रियों या दंडादेशों से या ऐसे सिविल न्यायालय की दशा में, जिसकी डिक्रियों से कोई अपील साधारणतया नहीं होती है, साधारण आरंभिक सिविल अधिकारिता वाले ऐसे प्रधान न्यायालय से, जिसकी स्थानीय अधिकारिता में ऐसा सिविल न्यायालय अवस्थित हैः

बशर्ते -

(क) जहां अपील एक से अधिक न्यायालयों में होती है, वह अवर क्षेत्राधिकार वाला अपीलीय न्यायालय वह न्यायालय होगा जिसके अधीनस्त ऐसा न्यायालय समझा जाएगा।

(ख) जहां अपील एक दीवानी और राजस्व न्यायालय में भी होती है । ऐसे न्यायालय को उस मामले की प्रकृति या कार्यवाही के अनुसार दीवानी या राजस्व न्यायालय के अधीन माना जाएगा। जिसके संबंध में अपराध का आरोप लगाया गया है।”

(जोर दिया गया)

12. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 की उप धारा (1) (बी) से यह स्पष्ट है कि यह धारा दो अलग-अलग अपराधों के बारे में हैः

(i) भारतीय दंड संहिता की धारा 193 से 196 (दोनों समावेशी), 199, 200, 205 से 211 (दोनों समावेशी) और धारा 228 के तहत दंडनीय किसी भी अपराध के लिए, जब ऐसा अपराध कथित रुप से किया गया हो या किसी मामले में किसी कार्यवाही के संबंध में धारा 195 (1) (बी) (I)

(ii) धारा 463 में वर्णित किसी भी अपराध के लिए या धारा 471 के अधीन दंडनीय भारतीय दंड संहिता की धारा 475 या धारा 476, जब ऐसा अपराध अभिकथित किया जाता है और किसी कार्यवाही में पेश किए गए या साक्ष्य में दिए गए प्रतिबध्द दस्तावेज के संबंध में। [धारा 195 (1) (बी) (ii)]

13. इन धाराओं को पढ़ने पर यह आसानी से देखा जा सकता है कि धारा 195 (1) (बी) (i) और धारा 195 (1) (बी) (ii) के अधीन अपराध स्पष्ट रूप से सुभिन्न हैं। अपराधों की पहली श्रेणी झूठे साक्ष्य के अपराधों और सार्वजनिक न्याय के खिलाफ अपराधों

को संदर्भित करती है, जबकि अपराधों की दूसरी श्रेणी किसी न्यायालय में किसी कार्यवाही में पेश किए गए या साक्ष्य में दिए गए किसी दस्तावेज के संबंध में अपराधों से संबंधित है।

14. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 में न्यायालय द्वारा पालन किए जाने वाले नियम का उल्लेख है जो उसमें विनिर्दिष्ट अपराध का संज्ञान लेता है किंतु उसमें न्यायालय के मार्गदर्शन के लिए कोई निदेश नहीं है जो पश्चात्वर्ती न्यायालय में किसी कार्यवाही में किए गए अभिकथित अपराध के संबंध में अभियोजन आरंभ करना चाहता है।इस प्रयोजन के लिए व्यक्ति को धारा 340 की ओर मुड़ना चाहिए जो न्यायालय से यह अपेक्षा करती है कि वह स्वतः संज्ञान लेते हुए या इस संबंध में उसे कोई आवेदन करते हुए विधि को गतिशील बनाए।

15. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 इस प्रकार हैः

> "340 में वर्णित मामलों में प्रक्रिया धारा 195- (1) जब, इस निमित्त या अन्यथा किए गए किसी आवेदन पर, किसी न्यायालय की यह राय है कि न्याय के हित में यह समीचीन है कि धारा 195 की उपधारा (1) के खंड (ख) में निर्दिष्ट किसी अपराध की जांच की जाए, जो उस न्यायालय या, यथास्थिति, उस न्यायालय में किसी कार्यवाही में पेश किए गए या दिए गए किसी दस्तावेज के संबंध में या उसके संबंध में किया गया प्रतीत होता है, तो ऐसा न्यायालय ऐसी प्रारंभिक जांच के बाद, यदि वह आवश्यक समझे, -
>
> (क) इस आशय के निष्कर्षों को अभिलिखित करना
>
> (ख) इसकी लिखित शिकायत करना
>
> (ग) इसे क्षेत्राधिकार वाले प्रथम श्रेणी के दण्डाधिकारी को भेजें।
>
> (घ) ऐसे दण्डाधिकारी के समक्ष अभियुक्त की हाजिरी के लिए पर्याप्त प्रतिभूति ले सकेगा या यदि अभिकथित अपराध

अजमानतीय है और न्यायालय ऐसा करना आवश्यक समझता है तो अभियुक्त को अभिरक्षा में ऐसे मजिस्ट्रेट को भेज सकेगा।

(ङ) किसी व्यक्ति को ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने और साक्ष्य देने के लिए आबद्ध कर सकता है।

(2) किसी अपराध की बाबत उपधारा (1) द्वारा न्यायालय को प्रदत्त शक्ति किसी ऐसे मामले में जहां उस न्यायालय ने न तो उस अपराध की बाबत उपधारा (1) के अधीन परिवाद किया है और न ही ऐसी परिवाद करने के लिए किसी आवेदन को नामंजूर किया है, धारा 195 की उप-धारा (4) के अर्थ में उस न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जाता है जिसके लिए ऐसा पूर्व न्यायालय अधिनस्त है।

(3) इस धारा के अधीन की गई शिकायत पर हस्ताक्षर किए जाएंगे, -

(क) जहां शिकायत करनेवाला न्यायालय एक उच्च न्यायालय है, न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा जिसे न्यायालय नियुक्त कर सकता है।

(ख) किसी अन्य मामले में न्यायालय के, पीठासीन अधिकारी द्वारा [या न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा जिसे न्यायालय इस संबंध में लिखित रूप में अधिकृत कर सकता है।]

(4) इस धारा में, "न्यायालय" का वही अर्थ है जो धारा 195 में है ।

16. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 यह स्पष्ट करती है कि इस धारा के तहत अभियोजन केवल उस न्यायालय की मंजूरी से शुरू किया जा सकता है जिसकी कार्यवाही के तहत धारा 195 (1) (बी) में निर्दिष्ट अपराध कथित रूप से किया गया है।इस धारा का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि क्या न्याय प्रशासन को प्रभावित करने वाला कोई अपराध उस समय के दौरान न्यायालय में पेश किए गए या साक्ष्य में दिए गए किसी दस्तावेज के

संबंध में किया गया है जब दस्तावेज या साक्ष्य अभिरक्षा में था और क्या न्याय के हित में भी ऐसी कार्रवाई करना समीचीन है। न्यायालय केवल - प्रथम दृष्टया मामले पर विचार करें लेकिन यह भी देखें कि क्या किसी आपराधिक कार्यवाही को संस्थित किए जाने की अनुमति देना जनहित में है या नहीं।

17. इस न्यायालय ने चाजू राम बनाम राधेश्याम, (1971) 1 एससीसी 774 में पृष्ठ 779 पर यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 195 के अधीन अभियोजन केवल न्यायालय की मंजूरी से शुरू किया जा सकता है और केवल तभी जब यह जानबूझकर और सचेत प्रतीत होता है। इसने जोर देकर कहा किः

> “7. झूठी गवाही के लिए अभियोजन को केवल उन मामलों में अदालतों द्वारा मंजूर किया जाना चाहिए जहां झूठी गवाही जानबूझकर दी गई और सचेत प्रतीत होती है और सजा उचित रूप से संभावित या संभावित है। इसमें कोई शक नहीं है कि मिथ्या साक्ष्य देना और मिथ्या शपथपत्र दाखिल करना एक बुराई है जो प्रभावी रूप से एक मजबूत हाथ से नियंत्रित किया गया है लेकिन बिना किसी सावधानी के बहुत आसानी से और बहुत बार झूठी गवाही के लिए मुकदमा शुरू करना और अनिर्णायक और संदिग्ध सामग्री पर इसका उदेश्य विफल हो जाता है । न्याय के हित में दंड देने के लिए समीचीन समझे जाने पर अभियोजन को आदेश दिया जाना चाहिए। अपराधी और केवल इसलिए नहीं कि बयान में कुछ अशुध्दि है जो निर्दोष या सारहीन हो सकती है । पदार्थ के मामले पर जानबूझकर झूठ का मामला होना चाहिए और अदालत को संतुष्ट होना चाहिए कि आरोप के लिए उचित आधार है।”

18. संतोख सिंह बनाम इजहार हुसैन और अन्य, (1973) 2 एससीसी 406, में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्येक गलत या झूठा कथन न्यायालय के लिए अभियोजन का आदेश देना बाध्यकारी नहीं बनाता है। न्यायालय को सभी प्रासंगिक परिस्थितियों के आलोक में न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग करना पड़ता है जब वह समीचीन का प्रश्न निर्धारित करता है। अदालत न्याय प्रशासन के व्यापक हित में अभियोजन

का आदेश देती है और व्यक्तिगत प्रतिशोध या प्रतिशोध की भावनाओं को संतुष्ट करने या किसी निजी पार्टी के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए नहीं। इस तरह के अपराधों के लिए बार-बार मुकदमा चलाने से इसका उद्देश्य ही विफल हो जाता है।केवल जानबूझकर झूठ बोलने के स्पष्ट मामलों में ही अदालत को अभियोजन का निर्देश देना चाहिए।

19. इस न्यायालय ने एम. एस. अहलावत (पूर्वोक्त) वाले मामले में स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अधीन किए गए कथित अपराध के संबंध में निजी परिवाद पूर्णतः वर्जित हैं और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 के अधीन विहित प्रक्रिया आज्ञापक है।यह अभिनिर्धारित किया गया किः

> ”5.भारतीय दंड संहिता का अध्याय 11 झूठे साक्ष्य और सार्वजनिक न्याय के खिलाफ अपराधों से संबंधित है और इसमें आने वाली धारा 193 में न्यायिक कार्यवाही में झुठे सबूत देने या गढ़ने के लिए सजा का प्रावधान है। दंड प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) की धारा 195 में यह प्रावधान किया गया है कि जहां कोई कार्य लोक सेवकों के कानूनी प्राधिकार की अवमानना के अपराध या लोक न्याय के खिलाफ अपराध के बराबर है जैसे कि आईपीसी की धारा 193 के तहत झूठा साक्ष्य देना आदि, या किसी अदालत में वास्तव में उपयोग किए गए दस्तावेजों से संबंधित अपराध, वहां निजी अभियोजन पूरी तरह से वर्जित हैं और केवल वही अदालत जिसके संबंध में अपराध किया गया था, कार्यवाही शुरू कर सकती है। सीआरपीसी की धारा 195 के प्रावधान अनिवार्य हैं और किसी भी अदालत के पास इसमें उल्लिखित किसी भी अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार नहीं है जब तक कि उस धारा के तहत आवश्यक लिखित शिकायत न हो।यह स्थापित कानून है कि प्रत्येक गलत या गलत बयान अदालत के लिए अभियोजन का आदेश देने को अनिवार्य नहीं बनाता है, लेकिन (सिक) केवल न्याय प्रशासन के व्यापक हित में अभियोजन का आदेश देने के लिए न्यायिक विवेक का उपयोग करना चाहिए।

> 6. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 यह प्रक्रिया निर्धारित करती है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 के अधीन शिकायत कैसे की जाए। सीआरपीसी की धारा 195 के तहत प्रावधान अनिवार्य हैं और कोई भी अदालत इसमें संदर्भित अपराधों का संज्ञान नहीं ले सकती है। ऐसे अपराधों के संबंध में अदालत के पास सीआरपीसी की धारा 340 और शिकायत के तहत कार्रवाई करने का अधिकार है दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 के प्रावधानों से बाहर के मामलों को इसके अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के तहत किसी भी दीवानी, राजस्व या आपराधिक अदालत द्वारा दायर नहीं किया जा सकता है।"
>
> (जोर दिया गया)

20. जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 (1) (ख) के अधीन खंड अर्थात् उपधारा 195 (1) (ख) (i) और उपधारा 195 (1) (ख) (ii) पृथक् अपराधों की पूर्ति करती है। हालांकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 धारा 195 (1) (बी) के तहत किए गए अपराधों के लिए एक सामान्य धारा है, लेकिन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 (1) (बी) के खंड (i) और (ii) के लिए इसका अलग और विशेष रूप से उपयोग किया जाता है।

21. सचिदानंद सिंह (उपर्युक्त) वाले मामले में, जिस पर अपीलार्थी के विद्वत वकील ने भरोसा किया था, यह न्यायालय इस प्रश्न पर विचार कर रहा था कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 (1) (बी) (ii) में अंतर्विष्ट वर्जन ऐसे मामले पर लागू है जहां दस्तावेज की जालसाजी किसी न्यायालय में पेश किए जाने से पहले की गई थी।यह अभी निर्धारित किया गयाः

> "6. इस धारा के अध्ययन से वहाँ उल्लिखित बार के संचालन के लिए दो मुख्य सिध्दांतों का पता चलता है। सबसे पहले आरोप होना चाहिए कि एक अपराध (यह या तो धारा 463 में वर्णित अपराध होना चाहिए या भारतीय दंड संहिता की धारा 471,475,476 के तहत दंडनीय कोई

> अन्य अपराध) किया गया है। दूसरा यह कि इस तरह का अपराध किसी भी अदालत में कार्यवाही में पेश किए गए या साक्ष्य में दिए गए दस्तावेज के संबंध में किया जाना चाहिए था । हमारे सामने इस बात को लेकर कोई विवाद नहीं है कि यदि दस्तावेज न्यायालय की हिरासत में रहते हुए जालसाजी की गई है, तो उस न्यायायालय द्वारा की गई शिकायत पर ही मुकदमा चलाया जा सकता है । इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि यदि किसी ऐसे दस्तावेज के साथ जालसाजी की गई है जिसे अदालत में पेश नहीं किया गया है तो अभियोजन किसी व्यक्ती के कहने पर झूठ होगा। यदि हाँ, तो क्या अदालत में इसकी पेशी से कोई फर्क पड़ेगा ?
>
> xxx xxx xxx
>
> 23. उपर्युक्त चर्चा का अनुक्रम यह है कि संहिता की धारा 195 (1) (ख) (ii) में अंतर्विष्ट वर्जन किसी मामले पर लागू नहीं होती है जहां दस्तावेज से पहले किए गए दस्तावेज की जालसाजी को अदालत में पेश किया गया था। तदनुसार हम इस अपील को खारिज करते हैं।”

22. सचिदानंद सिंह (पूर्वोक्त) में, इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 (1) (बी) (ii) के बारे में विचार किया था जो वर्तमान मामले से भिन्न है जो धारा के पूर्ववर्ती खंड के अंतर्गत आता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 (1) (बी) (i) के तहत आने वाले अपराधों की श्रेणी में जनता के खिलाफ झूठे साक्ष्य देने और अपराधों का उल्लेख किया गया है जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 (1) (बी) (ii) के तहत उन अपराधों से स्पष्ट रूप से अलग है, जहां यह विवाद उत्पन्न हो सकता है कि क्या किसी दस्तावेज को बनाने का अपराध अदालत के बाहर किया गया था या जब यह अदालत की हिरासत में था। इसलिए, यह निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है।

23. मौजुदा मामला पूरी तरह से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 (1) (बी) (i) के तहत आने वाले मामलों की श्रेणी में आता है क्योंकि अपराध आईपीसी की धारा 193 के तहत दंडनीय है।हमारे विचार से, उच्च न्यायालय ने दण्डाधिकारी के आदेश को उचित रूप

से रद्द कर दिया है।हालांकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हम उच्च न्यायालय द्वारा लगाए गए खर्चों को रद्द करना उचित समझते हैं।

24. अपील का निपटान तदनुसार किया जाता है।

(ए.के. सीकरी), न्यायमूर्ति

(एस. अब्दुल नजीर), न्यायमूर्ति

नई दिल्ली

04 फरवरी, 2019

[k.Mu (fMLDysej) %& LFkkuh; Hkk'kk esa fu.kZ; ds vuqokn dk vk"k;] i{kdkjksa dks bls viuh Hkk'kk esa le>us ds mi;ksx rd gh lhfer gS vkSj vU; iz;kstUkkFkZ bldk mi;ksx ugha fd;k tk ldrkA leLr O;ogkfjd] dk;kZy;h] U;kf;d ,oa ljdkjh iz;kstukFkZ] fu.kZ; dk vaxzsth laLdj.k gh izekf.kd gksxk lkFk gh fu'iknu rFkk dk;kZUo;u ds iz;kstukFkZ vuqekU; gksxkA